VOL- XI | ISSUE- IV | APRIL | 2024 | PEER REVIEW e-JOURNAL | IMPACT FACTOR 8.02 | ISSN 2349-638x

गाँधी जी के दर्शन का आधार नैतिकतावादी धर्म

डॉ. नवज्योत भनोत
विभागाध्यक्ष (हिन्दी)
डॉ. भीमराव अम्बेडकर राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
श्रीगंगानगर (राज.)

गांधी जी के समस्त दर्शन का आधार व्यक्ति तथा समाज से सम्बन्धित वे अवधारणाएँ है, जो व्यक्ति को आत्मानुभव द्वारा पूर्णता की ओर ले जाती हैं। उनका मानना है कि व्यक्ति अन्तरात्मा की आवाज के आधार पर प्रकट शुभ संकल्पों के माध्यम से अपने व्यक्तित्व में नैतिकता, आध्यात्मिकता तथा विवेक से कुप्रवृत्तियों को हराकर सदप्रवृत्तियों द्वारा आन्तरिक तथा बाह्य अखण्डित स्वतन्त्रता को प्राप्त करता है, जिसके बल पर वह एक तरफ आत्मा को अविद्या से मुक्त करता है तो दूसरी तरफ आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक उच्च आदर्शों को प्राप्त करता है। गाँधी जी का मानना है कि आन्तरिक स्वतंत्रता प्राप्त करने पर ही व्यक्ति बाह्य स्वतंत्रता प्राप्त कर सकता है। स्वतन्त्रता का अर्थ यहां मात्र बौद्धिक स्वतंत्रता से नहीं है। गांधी जी कहते हैं केवल बौद्धिक विकास से ही स्वतंत्रता नहीं आती, वास्तविक स्वतंत्रता हृदय की गहराइयों में पहुंचने से आती है, जो अन्य प्राणियों की पीड़ा को पहचानने और उनके साथ प्रेम करने से प्राप्त होती है। इसी कारण गांधी जी आदर्श व्यक्ति बनाने की आवश्यकता को महसूस करते हुए सत्य, अहिंसा, प्रेम, दया, समभाव, सहिष्णुता को जीवन में उतार कर उदात्तता की ओर जाने का पथ निर्मित करते हैं। वे मानते हैं कि व्यक्ति के जीवन-मूल्यों एवं विचार पद्धतियों में परिवर्तन द्वारा आदर्श समाज की स्थापना की जा सकती है। व्यक्ति में अन्तर्निहित असीम शक्तियों को जाग्रत कर उन्हें प्रकृति के कण-कण के साथ संयुक्त किया जा सकता है। चेतना युक्त अन्तसः के प्रकाश में लिए गए निर्णय मौलिकता की विशिष्टता के साथ विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों को अभियोजित करने में सहायक होते हैं। गांधी जी नैतिकता और आत्मज्ञान से युक्त आदर्श व्यक्ति को अपने दर्शन का केन्द्र बिन्दु मानकर उसे परम साध्य के रूप में स्वीकार करते हैं।

गांधी जी मानव जीवन के लक्ष्यों को स्पष्ट करते हुए कहते हैं 'जीवन एक प्रेरणा है, जिसका लक्ष्य पूर्णता के लिए प्रयासशील रहना है, जो आत्मोपलब्धि है।"[१]

गांधी जी का सम्पूर्ण बल व्यक्ति की आत्मा के विस्तार पर केन्द्रित है, जहाँ आन्तरिक विकास सुधारात्मक गतिशीलता के साथ बाह्य व्यक्तित्व के उच्चतम आदर्श को प्राप्त करता है। इस प्रक्रिया में सत्याग्रह एवं अनासक्ति बोध से परिपूर्ण विचार एवं कार्य व्यक्ति को पवित्र बनाते हैं। गांधी जी को पूर्ण विश्वास था कि सत्य अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, अभय, रस-निग्रह आदि व्रतों के पालन द्वारा तृष्णाओं पर विजय प्राप्त कर समदृष्टा हो चुका व्यक्ति ही आदर्श समाज की पुनर्रचना करने में सक्षम होता है।

मानव-अस्तित्व, समाज की प्रगति, स्थिरता एवं सत्ता परस्पर सम्बद्ध हैं। व्यक्ति समाज में रहकर ही अपने जीवन के लक्ष्य प्राप्त करता है। गांधी जी मानते हैं कि सर्वोदय पर आधारित सामाजिक व्यवस्था का आधार आध्यात्मिक होने के कारण उसकी सिद्धि के साधन भी सत्य और अहिंसा पर आधारित अटल मूल्यों को पोषित करते हैं। ऐसी स्थितियों में व्यक्ति और समाज के मध्य परस्पर विरोध के स्थान पर परस्पर अनिवार्य एकता का विश्वास जड़ें जमाता है और केन्द्र

बना व्यक्ति स्वैच्छिक सहयोग एवं त्याग द्वारा समतामूलक समाज के निर्माण का लक्ष्य निर्धारित करते हुए शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व कायम करता है। गांधी जी की दृष्टि में आदर्श व्यक्ति ही समाज के विकेन्द्रीकरण द्वारा मानव समाज की समस्त जटिलताओं को दूर कर मनुष्यता को सुरक्षित रख सकता है। वे मनुष्य के अंतस में निहित चैतन्य शक्ति, आत्मा जैसे सर्वव्यापी एवं शाश्वत तत्त्व को आधार मान कर समस्त अन्तर्विरोधों को समाप्त करते हैं। भारतीय दर्शन के अनुरूप गांधी जी अपने चिंतन में आत्मा को विशेष स्थान प्रदान कर मनुष्य के भौतिक व्यवहारों एवं क्रियाकलापों के साथ उसकी वास्तविक प्रकृति, उसके आध्यात्मिक तत्व के आधार पर जगत को पूर्ण प्रकाशित करने का लक्ष्य निर्धारित करते है। आत्मा की सत्ता और पुर्नजन्म की अवधारणा में विश्वास होने के कारण वे स्वल्प प्रयासों की उदात्तता का मूल्य सभी के लिए कल्याणकारी मानते हैं। वे कहते हैं 'आत्मा शरीर के उपरान्त भी विद्यमान रहती है. इस ज्ञान के कारण सत्याग्रही इसी जीवन में सत्य की विजय देखने के लिए अधीर नहीं होता। अपने द्वारा सामयिक रूप से अभिव्यक्त सत्य को विरोधी भी ग्रहण कर सकें, इसके प्रयास में मरण का भी वरण करने की क्षमता में ही वस्तुतः सत्याग्रही की विजय निहित है।[२] इसी विश्वास के कारण वे व्यक्ति और समाज के मध्य विद्यमान एकता को एक ही चेतना के एक ही स्त्रोत से शासित अनिवार्य एकता मानते हुए व्यक्ति और समुदाय के विकास में कोई भेद नहीं मानते, क्योंकि व्यक्ति के विकास पर ही समुदाय का विकास निर्भर करता है. जिसे व्यक्ति अपने सेवाभाव और समर्पण से समृद्ध करता है।

गांधी जी सेवा के प्रति व्यक्ति के समर्पण को उसकी स्वतंत्रता मानते हैं तथा स्वतंत्रता को इस समुदाय के प्रति समर्पण के रूप में परिभाषित करते हैं. अर्थात् व्यक्ति का धर्म स्वतंत्र समाज में रहकर समाज को सेवा अर्पित करना है। गांधी जी व्यक्ति को समाज का मूलधन मानते हैं। चूंकि व्यक्ति की आकांक्षाएं, सामाजिक आकांक्षाओं का रूप धारण करती हैं, व्यक्ति का चिंतन, व्यक्ति की भावनाएं तथा व्यक्ति के संकल्प उसके और समाज के भविष्य का निर्माण करते हैं। इसीलिए गांधी जी व्यक्ति के आचरण की शुद्धता के माध्यम से सर्वोदय समाज की परिकल्पना करते हुए सामंजस्यपूर्ण अहिंसात्मक एवं कल्याणकारी समाज की आकांक्षा करते हैं, जहां भौतिक लक्ष्यों के साथ-साथ आध्यात्मिक विकास से परिपूर्ण व्यक्ति स्वेच्छा से नैतिक नियम के पालन द्वारा समाज सेवा हेतु तत्पर रहते हैं।

गांधी के लिए धर्म और नैतिकता शब्द पर्यायवाची है। वे मानते हैं कि नैतिकता से विलग होकर व्यक्ति सच्चे धर्म का वाहक नहीं हो सकता। नैतिक सिद्धान्तों पर आधारित होने के कारण वे धर्म को नैतिकवादी धर्म कहते हैं। वे कहते हैं जैसे ही हम नैतिक आधार को खो बैठते हैं वैसे ही हम धार्मिक नहीं रह जाते। नैतिकता का अतिक्रमण करने वाला धर्म होता ही नहीं, उदाहरणार्थ झूठा, निष्ठुर एवं विसंगत होते हुए कोई भी मनुष्य यह दावा नहीं कर सकता कि ईश्वर उसके पक्ष में है।[३] इसीलिए गांधी जी मनुष्य के लिए नैतिक अनुशासन का अनुगमन आवश्यक मानते हैं। वे मानते हैं कि जब व्यक्ति सत्यान्वेषण, तपस्या, आत्मसंयम तथा इन्द्रिय निग्रह द्वारा बुराइयों से ऊपर उठकर आत्म विजय प्राप्त कर ईश्वर को पाने की सामर्थ्य से युक्त हो जाता है तो वह नैतिक और भौतिक प्रगति के समन्वय द्वारा आदर्शमय सामाजिक पुनर्निर्माण करते हुए समस्त प्राणियों के कल्याण की प्रेरणा बनता है। वे नैतिकता को सर्वोच्च धर्म और आध्यात्मिक एकता के सिद्धान्त का विनियोग मानते हैं। वे अहिंसा धर्म का पालन ऋषियों सन्तों के लिए ही नहीं बल्कि सर्वसाधारण के लिए भी उतना ही आवश्यक मानते हैं। उनके मत में अहिंसा के मूलभूत सिद्धान्त के अनुसार जो एक के लिए श्रेयस्कर है वह समान भाव से सारे विश्व के लिए श्रेयस्कर है।[४]

उनके अनुसार अहिंसा अपने भावात्मक रूप प्रेम को प्राप्त करने के साथ-साथ मानव को क्षुद्र स्वार्थों से ऊपर उठाकर व्यक्ति और समाज को सकारात्मक शक्ति प्रदान करती है। यह नैतिकता की साधना में ज्ञान तत्व के

कारण सम्भव हो पाता है और यही ज्ञान, विवेक को विकसित कर स्वार्थ एवं परमार्थ में अंतर करने की दृष्टि प्रदान कर आत्मशुद्धि का कारण बनता है। नैतिक आधार के परिणामस्वरूप प्राप्त आत्मशक्ति मनुष्य को भय मुक्त करते हुए कर्त्तव्य भावना को पुष्ट कर दैहिक बन्धनों से मुक्त करने का साधन बनती है। प्रेम और विनम्रता पर आधारित अहंकार शून्य आत्मबल ही मानवता की सेवा एवं परमार्थ के लिए उत्प्रेरक बनता है। गांधी जी कहते हैं 'सच्ची नम्रता सचमुच लोक संग्रह की भावना से किया गया पूर्ण रूपेण दृढ़ एवं निरन्तर कर्म योग है। ईश्वर अविराम कर्मरत है इसलिए हम उसकी भक्ति करना चाहते हैं या फिर उन्हीं में तदाकार हो जाना चाहते हैं तो हमें भी निरन्तर कर्म की साधना करनी होगी। यही कठोर साधना हमारे लिए सच्चा विश्राम होगी। यही अविराम कर्मयोग हमारी अर्वणनीय शक्ति की कुंजी होगा।[५] उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि भावात्मक दृष्टिकोण की प्रधानता के कारण गांधी जी सर्वोदय को मानव एवं समाज का परम लक्ष्य मान कर उस तक पहुंचने के लिए शुद्धीकरण की जिस प्रक्रिया को अपनाने की बात करते हैं, वह स्वस्थ समाज की रचना की दिशा में किया जाने वाला स्तुत्य प्रयास है। गांधी जी इंडिया ऑफ माय ड्रीम्स नामक पुस्तक में ऐसे ही समाज की परिकल्पना करते हुए कहते हैं कि 'मैं वैसे भारत के लिए कार्य करूंगा, जिसमें गरीब से गरीब यह अनुभव कर सकेगा कि यह देश उसका देश है, जिसके निर्माण में उसकी आवाज का मोल है। वैसा भारत जिसमें कोई उच्च और निम्न वर्ग में नहीं बांटा जाएगा, सभी लोग पूर्ण सहयोग के साथ रहेंगे, जहां छूत और मद्यपान का अभाव होगा और स्त्रियां पुरुषों के बराबर ही अपने अधिकारों का प्रयोग करेंगी। चूंकि हमें विश्व के अन्य देशों के साथ शांति से रहना है, अतः न किसी का शोषण करना है. न शोषित होना है, इसलिए थोडी संख्या में सेना को रखा है, सभी के हितों की चिन्ता करनी है।[६] गांधी जी समाज में पनपती बुराइयों को समाप्त करने के लिए समाज में आवश्यकतानुसार परिवर्तन कर आदर्श की स्थापना द्वारा शोषण मुक्त अहिंसक समाज की रचना को महत्त्व देते हैं। समाज और व्यक्ति अंग अंगी की भांति अलग-अलग स्वतंत्रता और अलग-अलग लक्ष्यों के साथ एक दूसरे की स्वतंत्रता और लक्ष्यों में बाधक नहीं साधक बनते हैं।

गांधी जी की नैतिकता की परिभाषा अहिंसक राज्य के सदर्भ में और भी अधिक स्पष्ट, निष्पक्ष एवं सुसंगत प्रतीत होती है। वे अहिंसक राज्य के लिए भी केवल बहुमत के निर्णय को पर्याप्त नहीं मानते। महत्त्वपूर्ण मामलों में अल्पमत के निर्णय को भी पूर्ण महत्त्व एवं सम्मान देते हैं। क्योंकि अन्तरात्मा की आवाज के स्थान पर बहुमत के नियम का कोई मूल्य हो ही नहीं सकता उनके अनुसार 'अल्पमत को बहुमत से भिन्न कार्य करने का पूर्ण अधिकार है।"[७] क्योंकि यहां राज्य का लक्ष्य सभी को सुख प्रदान करना है। जहां व्यक्ति अपने अधिकारों का सृजन सत्य अहिंसा की खोज के आधार पर करते हुए अधिकारों को प्राप्त करने की पात्रता अर्जित करता है और कर्त्तव्य के अधिकार से दूसरों के साथ आध्यात्मिक एकता स्थापित कर सेवा कर्म करते हुए आत्मानुभव का सुअवसर प्राप्त करता है।इसीलिए गांधी जी क्षणभंगुर वस्तुओं की अपेक्षा आध्यात्मिक वस्तुओं की प्रामाणिकता को अधिक स्वीकार करते हैं। वे मानते हैं कि राज्य की संगठित शक्ति की तुलना में व्यक्ति की नैतिक अन्तरात्मा श्रेयस की भावना से भरपूर है। प्रत्येक व्यक्ति की सार्वभौमिकता को अर्पित करके सभी के कल्याण और उदय का चरम लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है। इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वे ट्रस्टीशिप की भावना को समाज का आदर्श मानकर राज्य के हाथों में शक्ति का केन्द्रीकरण उचित नहीं मानते। वे मानते हैं कि भौतिक, आर्थिक, आध्यात्मिक विभिन्न प्रकार के साधनों का उपयोग सभी के समान सुख के लिए होता है।

गांधी जी पाश्चात्य जगत की प्रबल भौतिकवादी धारा के विरुद्ध सत्य और अहिंसा के बल पर स्वराज्य की स्थापना का उद्देश्य रखते हैं। ऐसे समय में जब पूरा

विश्व सामाजिक विघटन के संक्रमणकालीन दौर से गुजर रहा हो, मानव की भोगवादी वृत्तियों का अन्तहीन सिलसिला प्रकृति के शोषण की प्रक्रिया को निरन्तरता प्रदान कर रहा हो, गांधी जी नैतिक एवं आध्यात्मिक व्यक्ति के माध्यम से सामाजिक समरसता की स्थापना का मार्ग प्रशस्त करते हैं। वे मानते हैं "कि सच्चा प्रेम समुद्र की तरह निस्सीम होता है और हृदय के भीतर ज्वार की तरह उठकर बढ़ते हुए बाहर की तरफ फैल जाता है तथा सीमाओं को पार करके दुनियां के छोरों तक जा पहुंचता है।"[८] व्यक्ति का यही प्रेम उसे संतुलित दिशाएं प्रदान कर निष्काम कर्मयोग एवं सत्याग्रह की सार्थक एवं आदर्शात्मक उपयोग विधियों द्वारा युगों-युगों तक समाज, मानव और प्रकृति के सामंजस्य को घनीभूत करने की प्रेरणा बनकर प्रासंगिक और महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

गाँधी जी मानते हैं कि उच्च आदर्शों को प्राप्त कर सर्वकल्याण के लिए संसार से तटस्थ होकर साधना करने की आवश्यकता नहीं है, बल्कि संसार में रहकर सत्य, अहिंसा, प्रेम एवं नैतिकता जैसे उच्च आदशों को व्यावहारिक रूप में लागू करके विवेकोद्भूत शांति प्राप्त करना श्रेयस्कर है। वे सत्य के अन्वेषी बनकर लौकिक क्षेत्रों में आदर्श की स्थितियां निर्मित करने के पक्षधर हैं न केवल दर्शन के रूप में, बल्कि व्यवहार की नीति बनाकर विषमता को समाप्त कर एकता के साधन के रूप में देखते हैं। उनकी यह एकता सम्पूर्ण सृष्टि की एकता के लक्ष्य पर आधारित है। गांधी जी कहते हैं मैं ईश्वर की परिपूर्ण एकता में विश्वास करता हूँ। अतः मानवता की भी परिपूर्ण एकता का विश्वासी हूँ।[९] और मैं अद्वैत का विश्वासी हूँ, मैं मनुष्य की बल्कि समस्त जीवों की एकता का विश्वासी हूँ।[१०]इसी आध्यात्मिक एकता से स्वतंत्रता के उच्च लक्ष्य की प्राप्ति करके गांधी जी ने मानव जाति को यह संदेश दिया कि उसका भविष्य इन्ही आदर्शों में निहित है। इन्हीं से ऊर्जा संचित कर सर्वोदय अर्थात् सबका उत्कर्ष, सबका उदय और सबका विकास सम्भव है।

संदर्भ :-

१. हरिजन, 22 जून, 1935
२ स्पीचस् एंड राईटिंग ऑफ एम.के गांधी, मद्रास सन् 1934 पृ.सं. 504
३. यंग इंडिया, 24 नवम्बर 1921, पृ.सं. 385
४. हरिजन 12 नवम्बर, 1938, पृ.स. 320
५. धीरेन्द्र मोहन दत्त, महात्मा गाँधी का दर्शन, पृ. 64
६. गांधी एम.के इंडिया ऑफ माय ड्रीम्स. पृ.सं. 6
७ यंग इंडिया भाग-1. पृ.सं. 864-65
८. यंग इंडिया, 20 सितम्बर, 1928
९. यंग इंडिया, भाग 2. पृ.सं. 79
१९. वही. पृ.सं. 421